

कार्बन को ज़मीन में दफनाना कितना व्यावहारिक?

के. जयलक्ष्मी

इसमें कोई दो राय नहीं है कि कोयला बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन यह कई समस्याओं की जड़ भी है। यही वजह है कि हम इसे न तो पूरी तरह खुशी-खुशी अंगीकार कर सकते हैं और न ही पूरी तरह छोड़ सकते हैं। तो फिर करें क्या? एक उपाय और है, जिस पर आज दुनिया भर में प्रयोग किए जा रहे हैं - कोयले से निकलने वाले कार्बन को किसी तरह पकड़कर नीचे पाताल में दफन कर देना। आखिर कार्बन ही तो है जिससे हमें सबसे ज़्यादा खतरा है। इन दिनों कोयला लॉबी की उम्मीदें उन अनुसंधानों और पॉयलट प्रोजेक्ट्स पर टिकी हैं, जिनमें कार्बन को पकड़कर (कैप्चर करके) उसे पर्यावरण से अलग-थलग कर दिया जाएगा। अंग्रेज़ी में इसे कार्बन कैप्चर एंड सिक्वेस्ट्रेशन (सीसीएस) नाम दिया गया है।

पेरिस स्थित इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी की सीसीएस इकाई के एक आकलन के अनुसार अगर दुनिया में 3200 सीसीएस परियोजनाएं शुरू कर दी जाएं तो इससे कार्बन उत्सर्जन में 15 फीसदी तक की कमी संभव हो सकेगी। हमारी अगली पीढ़ियों के लिए जीने लायक वातावरण का निर्माण हो सके, उस वास्ते कार्बन उत्सर्जन में इतनी कमी बेहद ज़रूरी है।

हर साल मानव गतिविधियों की वजह से जो 30 अरब टन कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित होती है, उसका 25 फीसदी हिस्सा बिजली उत्पादन के लिए कोयला जलाने से पैदा होता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर हम वर्ष 2050 तक वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की वृद्धि 450 पीपीएम तक सीमित कर सके, तो 50 फीसदी उम्मीद है कि हम वर्ष 2100 तक वैश्विक तापमान में वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे रखने में सफल रहेंगे।

मगर दुनिया में इस समय आधा दर्जन से भी कम सीसीएस परियोजनाएं ही पूर्ण क्षमता से कार्य कर रही हैं। कुल मिलाकर देखें तो 235 सीसीएस परियोजनाओं के

प्रस्ताव हैं, जिनमें से 45 पूर्ण क्षमता वाली परियोजनाएं हैं। जो आधा दर्जन परियोजनाएं कार्यरत हैं, उनमें दो नॉर्वे और एक-एक अमरीका, नीदरलैंड्स, कनाडा और अल्जीरिया में हैं। लेकिन ये सभी परियोजनाएं प्राकृतिक गैस से कार्बन कैप्चर कर रही हैं, क्योंकि यह आसान भी है और सस्ता भी। लेकिन प्राकृतिक गैस से कोयले के मुकाबले मात्र आधी मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों उत्सर्जित होती हैं। ज़रूरत तो कोयले पर ध्यान देने की है।

मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी के अनुसंधानकर्ताओं ने ऐसा अल्पकालीन समाधान सुझाया है, जिसकी शुरुआती लागत कम होने से कोयला संयंत्रों में कार्बन कैप्चर कर उसके भंडारण को बढ़ाया जा सकता है। हालांकि इससे पूरा कार्बन तो कैप्चर नहीं हो पाता है, लेकिन फिर भी यह उत्सर्जन में कमी करने में तो मददगार साबित हुआ ही है। गत सितंबर में स्वीडन की वेटेनफाल ने जर्मनी में कोयले से चलने वाले बिजली संयंत्र को सीसीएस तकनीकी से लैस किया। इसे इस तकनीकी की एक ऊंची छलांग माना जा रहा है। 30 मेगावॉट क्षमता का यह पॉयलट संयंत्र प्रति घंटा 10 टन घनीभूत कार्बन डाईऑक्साइड पैदा करता है। इस कार्बन डाईऑक्साइड को टैंकरों में भरकर भंडारण करने के लिए पास के ही गैस फील्ड में ले आया जाता है। स्वीडन का यह प्रोजेक्ट चुनिंदा सीसीएस परियोजनाओं में शामिल है।

लेकिन सीसीएस परियोजनाओं की अनेक समस्याएं भी हैं। कोयले से चलने वाले मौजूदा बिजली संयंत्रों में इस तकनीक को लगाना काफी महंगा सौदा है। मनिटोबा विश्वविद्यालय के एक ऊर्जा विशेषज्ञ का आकलन है कि यदि कोयला आधारित संयंत्रों से एक साल में निकलने वाली कुल कार्बन डाईऑक्साइड का 10 फीसदी हिस्सा भी कैप्चर करना हो तो इस प्रक्रिया में जितनी घनीभूत कार्बन डाईऑक्साइड का परिवहन करना होगा, वह दुनिया भर में

तेल के सालाना प्रवाह से ज़्यादा होगा। दुनिया की किसी भी अर्थव्यवस्था में इतनी लागत वहन करना संभव नहीं है।

पुराने संयंत्रों में सीसीएस लगाने का मतलब होगा कि निकटतम भूमिगत भंडारण स्थल तक गैस ले जाने के लिए पाइप लाइन डालना। नए संयंत्रों को लेकर इस बात की दुविधा है कि उन्हें भूमिगत भंडारों के ऊपर स्थापित करें या ईंधन स्रोतों के निकट? दोनों ही में पाइपों, ट्रांसमिशन लाइनों पर बहुत अधिक लागत आएगी। भूमिगत भंडारण स्थलों से निकलने वाले पानी को डाइवर्ट करने पर जो श्रम और खर्च आएगा, वह अलग।

बहुत अधिक लागत

सीसीएस परियोजनाओं के लिए बड़े और ग्रिड से जुड़े एप्लीकेशनों के अलावा कोई अन्य बाज़ार नहीं है। सीसीएस परियोजनाओं के लिए बाज़ार बनाने का एक ही तरीका है कि ऊंची लागत वाली बिजली की मांग बनी रहे। इसके अलावा सीसीएस परियोजनाओं को तकनीकी रूप से परिपक्व होने में लंबा वक्त लगता है। इसकी डिज़ाइन तैयार होने, अनुमति मिलने और वित्तीय व्यवस्था होने में सालों लग जाते हैं। फिर परियोजना के निर्माण और उसे शुरू करने में भी काफी समय लग जाता है। सीसीएस परियोजनाओं में केवल पूंजीगत व्यय ही ज़्यादा नहीं होता, बल्कि इसका संचालन व्यय भी काफी होता है। कार्बन डाईऑक्साइड को पृथक करने, उसे परिष्कृत करने, घनीभूत करने और फिर भंडारण करने में अतिरिक्त ईंधन और पूंजी लगती है। 2007 में आईपीसीसी द्वारा किए गए आकलन के मुताबिक यह लागत प्रति किलोवॉट प्रति घंटा एक से पांच सेंट तक आएगी। लागत इस बात पर निर्भर करेगी कि बिजली संयंत्र किस तरह का है, कैप्चरिंग के लिए इस्तेमाल की गई तकनीक कैसी है, जहां कार्बन डाईऑक्साइड का भंडारण किया जाना है, उस भंडार का प्रकार कैसा है और परिवहन कितनी दूर से किया जाना है। इसमें भी सबसे अधिक खर्च कार्बन डाईऑक्साइड को कैप्चर करने में इस्तेमाल होने वाली ऊर्जा पर आता है।

इन खर्चों को पाटने के लिए कंपनियां दो विकल्पों की

ओर देख रही हैं। एक, कंपनियों को उम्मीद है कि कार्बन कैप्चर और उनके भंडारण का खर्च युरोपियन एमिशन ट्रेडिंग स्कीम के तहत मिल जाएगा। दूसरा, इस बात की बहुत संभावना है कि तेल क्षेत्रों में कार्बन डाईऑक्साइड इंजेक्शन से ईंधन पर बढ़ी लागत की कुछ हद तक पूर्ति हो सके। लेकिन शर्त यही होगी कि तेल क्षेत्र बहुत दूर नहीं होने चाहिए।

युरोपियन एमिशन ट्रेडिंग स्कीम की पहल क्योटो प्रोटोकॉल के तहत की गई है। इसके अंतर्गत युरोप में ऐसा बाज़ार प्रदान किया गया है जिसमें ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन भत्तों या उत्सर्जन कटौती यूनिट्स का व्यापार किया जा सकता है। लेकिन इस स्कीम में फिलहाल कार्बन कैप्चर और उसके भंडारण को शामिल नहीं किया गया है। इसके समर्थकों की ओर से प्रयास जारी हैं।

केवल यही मुद्दा नहीं है। कीमत का भी बड़ा मसला है। वर्ष 2010 में कार्बन क्रेडिट की कीमत प्रति टन कार्बन डाईऑक्साइड 12 से 18 यूरो थी। कार्बन कैप्चरिंग और उसके भंडारण की लागत को देखते हुए यह कीमत बहुत कम है।

जगह की ज़रूरत

कार्बन डाईऑक्साइड को दफन करने के लिए धरती के नीचे ज़मीन की जितनी आवश्यकता का अनुमान लगाया गया था, एक नए अध्ययन के अनुसार इससे भी पांच से बीस गुना अधिक ज़मीन की ज़रूरत पड़ेगी। *जर्नल ऑफ़ पेट्रोलियम साइंस एंड इंजीनियरिंग* में प्रकाशित अध्ययन 'बंद भूमिगत स्थान पर कार्बन सेक्वेस्ट्रेशन' कहता है कि इस सम्बंध में अब तक जितनी भी रिपोर्ट आई हैं, वे सभी बंद व्यवस्था में कार्बन डाईऑक्साइड के भंडारण की आवश्यकता का अनुमान लगाने में विफल रही हैं। अध्ययन कहता है, 'हमारी गणनाओं के अनुसार पूर्व के अनुमानों से भी पांच से बीस गुना अधिक भूमिगत भंडारण की ज़रूरत होगी। इस तरह कार्बन का सेक्वेस्ट्रेशन कार्बन डाईऑक्साइड के प्रबंधन का एक बहुत ही असंगत विकल्प है।' कोयले से चलने वाले एक पारंपरिक बिजली संयंत्र से निकलने वाले

कार्बन के भंडारण के लिए ज़मीन के नीचे अमरीका के किसी छोटे राज्य के बराबर ज़मीन की ज़रूरत होगी।

लेकिन मेनचेस्टर युनिवर्सिटी का अध्ययन कुछ और ही कहता है। इसके अनुसार सीसीएस कोई नई बात नहीं है। अध्ययन कहता है कि लाखों सालों से कार्बन डाईऑक्साइड प्राकृतिक तौर पर ज़मीन के नीचे पानी के भंडारों में संग्रहित होती आई है। आज जो गैस फील्ड हैं, वे इसी कार्बन डाईऑक्साइड के पानी में भंडारण का नतीजा है। प्राकृतिक तौर पर कार्बन डाईऑक्साइड या तो ज़मीन के नीचे स्थित पानी के भंडारों में मिल जाती है या फिर चट्टानों में मौजूद खनिज पदार्थों के साथ प्रतिक्रिया करके नए कार्बोनेट खनिज बनाती है। इस तरह कार्बन डाईऑक्साइड अनिवार्य रूप से ज़मीन के नीचे ही रहती है। आज के ये गैस फील्ड लाखों साल पहले प्राकृतिक रूप से कार्बन डाईऑक्साइड से भर गए थे। अध्ययन कहता है कि भूमिगत जल भंडार सबसे बड़े कार्बन सिंक हैं और वे लाखों साल से स्थिर बने हुए हैं। लेकिन क्या सीसीएस के लिए सही स्थान मिल सकता है?

नेचर जियोसाइंस पत्रिका में प्रकाशित नील्स बोह्र इंस्टीट्यूट के एक अनुसंधानकर्ता का अध्ययन कहता है कि कैसे ये कार्बन भंडार लंबे समय तक काम नहीं करते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आगे चलकर इन भंडारों में एकत्रित कार्बन डाईऑक्साइड रिसकर फिर से वातावरण में मिल जाती है। इसका परिणाम वैश्विक तापमान में वृद्धि, समुद्र के जल स्तर में इज़ाफा और ऑक्सीजन की कमी के रूप में सामने आ सकता है।

महासागरों की गहराई में कार्बन डाईऑक्साइड के भंडारण का विकल्प तो और भी बदतर है। इस तरह से भंडारण करने से तो कार्बन डाईऑक्साइड और भी तेज़ी से वातावरण में वापस लौटती है। इससे तो भूगर्भीय भंडारण एक बेहतर विकल्प है, बशर्ते कि कार्बन डाईऑक्साइड के रिसाव को प्रति एक हज़ार साल में एक फीसदी या उससे भी कम तक सीमित रखना सुनिश्चित हो सके।

कैंसर का खतरा!

सीसीएस को लेकर एक आशंका उससे फैलने वाले

प्रदूषण और उस वजह से होने वाले कैंसर को लेकर भी जताई गई है।

नॉर्वे की सरकार ने कार्बन डाईऑक्साइड को कैप्चर करके उसके सेक्वेस्ट्रेशन की एक अति महत्वाकांक्षी योजना को 2014 तक के लिए स्थगित कर दिया है। उसकी दलील है कि यह योजना इतनी जटिल है कि इसके विकास में कई साल लग जाएंगे। पश्चिमी नॉर्वे में स्थापित होने वाला यह प्रोजेक्ट इस तरह से डिज़ाइन किया जाना था कि उसके तहत औद्योगिक पैमाने पर कार्बन को कैप्चर किया जा सके। इसका मकसद यह भी साबित करना था कि सीसीएस की तकनीक इतनी सुरक्षित और प्रभावी है कि इससे कोयला संचालित बिजली संयंत्रों से निकलने वाले कार्बन उत्सर्जन को काफी हद तक कम किया जा सकता है। नॉर्वे सरकार का कहना है कि इस प्रोजेक्ट में विलंब तकनीकी वजह से हो रहा है, लेकिन मीडिया में आई रिपोर्ट्स कहती हैं कि बड़ी चिंता सीसीएस से होने वाले संभावित रिसाव को लेकर है।

ओस्लो विश्वविद्यालय और नॉर्वे के कुछ अन्य संस्थानों द्वारा जारी एक रिपोर्ट में वैज्ञानिकों ने सीसीएस की वजह से वातावरण में नाइट्रोसेमीन के संभावित फैलाव को लेकर चिंता जताई है। सरकार का कहना है कि सीसीएस परियोजनाओं से नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स और कार्बन डाईऑक्साइड का रिसाव होगा। इसी प्रक्रिया में अमोनिया व एमीन्स व उनकी परस्पर क्रिया से उत्पन्न होने वाले उत्पाद भी वातावरण में फैलेंगे। ये तो सीधे पानी में घुल जाएंगे।

तो अंत में कहा जा सकता है कि जब तक हम ऊर्जा का कोई बेहतरीन वैकल्पिक स्रोत नहीं खोज निकालते, तब तक हमें बचे-खुचे जीवाश्म ईंधन पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। ऐसे में कार्बन उत्सर्जन को कैप्चर कर उसका कहीं भंडारण या सद्दुपयोग सुनिश्चित करने की महती ज़रूरत नज़र आती है। हालांकि कार्बन उत्सर्जन में कमी करने के तरीके के रूप में सीसीएस पर बहुत ज़्यादा भरोसा नहीं किया जा सकता। यह क्षणिक राहत तो दे सकता है, लेकिन स्थाई समाधान पेश करने में समर्थ नहीं है। (*स्रोत फीचर्स*)